मुद्रकः—

"त्रैलोक्यनाथ शर्मा"

जमुना प्रिंन्टिग वर्क्स,

मथुरा।

मूल ग्रंथकर्ता का वक्तव्य।

किस प्रकार मनुष्य को अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिये, यह जीवन का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह ऐसा ही प्रश्न है जैसा कि पाठशाला में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए जोड़ बाकी का प्रश्न। जिस समय मनुष्य इस प्रश्न को हल कर लेता है उसकी सारी कठनाईयां जाती रहती हैं। जीवन के जितने भी प्रश्न हैं चाहे वे सामाजिक हों चाहे धार्मिक चाहे राजनैतिक, वे सब अज्ञानता के कारण हैं। ज्यों २ मनुष्य उन्हें व्यक्तिगत अपने हृदय में हल करते जाएंगे त्यों २ बहु संख्या में मनुष्य उन्हें हल कर लेंगे। मानव समाज वर्तमान में ज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर है। उसे अपनी अज्ञानता के कारण अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। जब मनुष्य उत्तम जीवन व्यतीत करना और ज्ञान के प्रकाश से अपनी शक्तियों का सदुपयोग करना सीख जांयगे तब जीवन का प्रश्न हल हो जाएगा और जितनी भी बुराइयां हैं वे सब दूर हो जाएंगी। ज्ञानी पुरुष के लिए कोई भी कठिनाई नहीं रहती।

जेम्स एलन—

विषय सूची ।

तन, मन और परिस्थितियों का नेता—

मनुष्य

१—विचारों का आन्तरिक जगत।

मनुष्य अपने सुख दुःख का कर्ता आप है। केवल वही उनका कर्त्ता और अपहरता है। सुख दुःख को कोई भी मनुष्य बाह्य में देख नहीं सकता, ये मन की आभ्यन्तर अवस्थायें हैं। इनका कारण न तो कोई देवी देवता हैं और न कोई भूत पिशाच है, किन्तु विचार परम्परा ही है। मनुष्य को अपने कार्यों के अनुसार ही सुख दुःख मिलता है। यदि कार्य अच्छे हैं तो उनका फल सुख रूप होगा, और यदि कार्य बुरे हैं तो उनका परिणाम भी बुरा होगा। कार्यों के अच्छे बुरे होने से मनुष्य के विचारों का पता लग जाता है, कारण कि विचार मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होते हैं, वे बाह्य में कार्य रूप में बदल जाते हैं। मनुष्य के मन की दृढ़ प्रवृत्ति से उसके चरित्र का पता लग जाता है और

चरित्र से ही उसे सुख दुःख मिलता है। जब यह बात है तो इस से यह परिणाम निकलता है कि यदि मनुष्य अपने सुख दुःख को बदलना चाहे तो उसे सब से पहिले अपने विचारों को बदलना होगा। यदि कोई मनुष्य अपने दुःख को सुख के रूप में परिवर्तन करना चाहता है, तो उसे अपने चरित्र और विचारों को जो दुःख का कारण हैं बदलना चाहिये। इस परिवर्तन से उसके मन और जीवन पर भारी प्रभाव पड़ेगा। जबतक मनुष्य स्वार्थयुक्त विचारों में डूबा रहता है, तब तक वह कदापि सुखी और सन्तोषी नहीं हो सकता और जब तक मनुष्य निःस्वार्थ भाव को लिये रहता है तब तक वह कभी दुःखी और क्लेशित नहीं हो सकता। जहां कार्य है, वहां कारण का होना आवश्यक है, कारण कि कार्य कारण का परस्पर में अविनाभावी सम्बन्ध है। मनुष्य में कारण के बदलने की शक्ति अवश्य है, परन्तु यदि वह कार्य को बदलना चाहे तो नहीं बदल सकता। वह अपने स्वभाव को पवित्र कर सकता है और अपने चरित्र का फिर से निर्माण कर सकता है। आत्म-संयम में प्रबल शक्ति है और अपने रूप के बदल देने में परमानन्द है।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य अपने ही विचारों से वेष्ठित है, परन्तु वह धीरे धीरे अपने विचारों के घेरे को बढ़ा सकता है और अपने मानसिक क्षेत्र को विस्तृत कर सकता है। वह अपने पतित स्थान को छोड़ कर उन्नत शिखर पर पहुंच सकता है नीच और घृणित विचारों को मन से निकाल सकता है और उन के स्थान में उच्च और पवित्र विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान दे सकता है। ज्यों ज्यों मनुष्य अपने विचारों को बदलता जायगा,

उनके मन्तव्य और सिद्धान्त एक दूसरे के सर्वथा विपरीत होते हैं और उनके कार्यों में भी विभिन्नता पाई जाती है। उनका नैत्तिक ज्ञान एक दूसरे के प्रतिकूल होता है। उनके मानसिक क्षेत्र प्रथक प्रथक होते हैं और दो वाह्य में स्पर्श करने वाले वृत्तों की भांति कभी नहीं मिलते। उनमें से एक तो स्वर्ग में वास करता है और दूसरा नरक में, अर्थात् एक को यह संसार महा भयंकर जान पड़ता है, परन्तु दूसरे को स्वर्ग धाम मालूम होता है। एक भय के मारे सदैव चिंतित और क्लेशित रहता है और अपनी रक्षा के लिये नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र रखता है, परन्तु दूसरे मनुष्य को किसी प्रकार का भय नहीं होता और न उसे शस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। उसके यहां बुद्धि, सुंदरता और सुजनता के लिये द्वार खुला रहता है। सद्गुण उसके मित्र होते हैं वे सदैव उसके मन मंदिर में वास करते हैं। उसके हृदय से सद्विचारों का स्रोत निकलता है और वह सब के साथ सद्व्यवहार करता है, जिसका यह परिणाम होता है कि सब कोई उससे प्रेम करते हैं और उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं।

मानव समाज में जो प्राकृतिक श्रेणियां पाई जाती हैं, वे विचारों के कारण ही होती हैं और आचार व्यवहार से ही उनका पता लगता है। लोग चाहे इन श्रेणियों का विरोध करें परन्तु वे इन्हें बदल नहीं सकते। संसार में ऐसी कोई भी औषधि नहीं है कि जो विचारों की उन अवस्थाओं को एक कर सके जिन में कोई प्राकृतिक सम्बन्ध नहीं है और जो जीवन के मौलिक सिद्धान्तों से भिन्न है। नियम विरुद्ध और नियम बद्ध सदा से प्रथक हैं। संसार में मनुष्य को एक दूसरे से

प्रथक करने वाली वस्तु घृणा या अहंकार बुद्धि नहीं है किन्तु मानसिक बुद्धि और कार्य प्रणाली है। मूर्ख और असभ्य मनुष्य अपने विचारों के कारण ही सभ्य और सुशील मनुष्यों से पृथक हैं परन्तु यदि वे लोग धीरे धीरे आत्मोन्नति करलें तो सभ्य मनुष्यों में उनकी गणना होने लगे। स्वर्गीय राज्य उद्दंडता से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उसे वही प्राप्त कर सकता है जो नियमानुसार चलता है।

गुण्डे और लुच्चे लोग गुण्डों की संगति में रहते हैं, परन्तु साधु महात्मागण संतों की संगति में रहते हैं और सब मिलकर ईश्वर का गुणानुवाद गाते हैं। सब लोग दर्पण के सदृश हैं जो सदैव अपने आन्तरिक भावों को प्रकट करते रहते हैं। यद्यपि दूसरों को देखते हैं, परन्तु वास्तव में वे दूसरों को देखकर स्वयं अपने को देखते हैं और सब वस्तुओं में उन्हें अपना ही प्रतिबिम्ब दिखलाई देता है।

प्रत्येक मनुष्य अपने ही विचारों से विस्तृत अथवा संकुचित घेरे में फिरा करता है। जो वस्तु उस घेरे के बाहर होती है, वह उसके लिये नहीं के बराबर होती है। जो कुछ वह बन गया है, वह केवल उसी को जानता है। विचारों की सीमा जितनी संकुचित होगी, उतना ही अधिक उसे विश्वास होगा कि इससे बाहर कुछ नहीं है। छोटे बर्तन में बड़ी चीज़ नहीं समा सकती। कहा भी है कि "आध सेर के पात्र में कैसे सेर समाय।" ऐसा मनुष्य महा पुरुषों के कथन को भली भांति नहीं समझ सकता। उनके समझने के लिये बड़ी भारी विद्वत्ता की आवश्यकता होती है और वह विद्वत्ता धीरे धीरे

उन्नति करने से प्राप्त होती है । जिस मनुष्य के विचार ऊंचे और बढ़े हुए हैं, वह सब छोटी छोटी बातों को जानता है। वह बड़े बड़े अनुभव प्राप्त करता है जिनमें छोटे छोटे अनुभव भी गर्भित रहते हैं। मनुष्य के प्रौढ़ होने पर जब उसकी विचार श्रृङ्खला बढ़ जाती है और जब वह सदाचार और पूर्णज्ञान प्राप्त करके अपने को दूसरे की संगति में उठने बैठने के योग्य बना लेता है, तब उसे इस बात का ज्ञान होता है कि मेरे संकुचित संसार के परे भी एक दूसरा जगत है जिससे मैं अब तक सर्वथा अनभिज्ञ था।

जिस प्रकार पाठशाला में विद्यार्थी अपनी योग्यतानुसार ही भिन्न भिन्न कक्षाओं में होते हैं, उसी प्रकार संसारी मनुष्य भी अपनी योग्यतानुसार ही संसार रूपी पाठशाला में भिन्न भिन्न श्रेणियों में पाये जाते हैं। जो विद्यार्थी पहली कक्षा में पढ़ता है, उसके लिए छठी कक्षा का क्रम महान कठिन है। वह उसकी बुद्धि से बाहर है। परन्तु यदि वही विद्यार्थी निरंतर श्रम करता रहे तो कुछ काल में छठी कक्षा में पहुंच जाएगा। बीच की कक्षाओं की पढ़ाई पूर्ण करने पर वह छठी कक्षा में आ जाता है और अब उसको छठी कक्षा ऐसी ही साधारण हो जाती है, जैसी कभी पहली थी। धीरे धीरे वह अध्यापक की भी परीक्षा पास कर लेता है। इसी प्रकार जिस मनुष्य के कार्य स्वार्थ वासना, कषाय और स्वेच्छा युक्त होते हैं, वह उन कार्यों को नहीं समझ सकता है जो उत्तम और पवित्र हैं और जिनमें स्वार्थ का नाम भी नहीं पाया जाता, परन्तु वह सद्विचारों और सत्कार्यों द्वारा उद्योग करके उस पद को प्राप्त कर सकता है। इन सब पदों से बढ़कर तीर्थंकरों और मुक्तिदाताओं

का पद है। जिनको समस्त मतावलम्बी किसी न किसी रूपमें पूज्य दृष्टि से देखते हैं। जिस प्रकार विद्यार्थियों की कक्षाएँ होती हैं, उसी प्रकार अध्यापकों की भी कई श्रेणियां होती हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने यद्यपि पद को प्राप्त नहीं कर पाया है तथापि वे अपने सच्चरित्र के बल से मनुष्यों के पथ प्रदर्शक और गुरू बनगये हैं और इसीके कारण लोग उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं।

प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों के अनुसार ही ऊंचा नीचा और छोटा बड़ा कहलाता है। यदि उसके विचार पवित्र और उत्कृष्ट हैं, तो वह उच्च श्रेणी का मनुष्य कहलाएगा, परन्तु यदि उसके विचार गंदे और घृणित हैं तो वह नीच और पतित कहलाएगा।

प्रत्येक मनुष्य अपने विचार रूपी क्षेत्र में परिभ्रमण किया करता है और विचार क्षेत्र ही उसका संसार है। वह इस संसार के उस भाग में रहता है जो उसकी गति के अनुकूल होता है। उसको ज़बरदस्ती नीचे स्थान में रहने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने विचारों को उच्च बना सकता है। और उन्नति कर सकता है। वह उन्नति करता हुआ उस स्थान पर पहुंच सकता है जहांपर आनन्द ही आनन्द है। भावार्थ यदि मनुष्य चाहे तो अपने स्वार्थयुक्त विचारों को सर्वथा दूर करदे और सद्विचारों को उनके स्थान में ले आए, यह सर्वथा उसके आधीन है।

२—पदार्थों का वाह्य जगत ।

चार जगत का दूसरा भाग पदार्थों का वाह्य जगत है । यह भीतरी जगत से बना है । बड़ी चीज़ में छोटी चीज़ समा जाती है । मन का दूसरा भाग शरीर है । घटनाएँ विचारों का स्रोत हैं । विचारों के समुदाय का नाम परिस्थिति है । संसार के प्रत्येक कार्य का मन से सम्बन्ध है । मनुष्य अपनी वाह्य परिस्थिति का एक अंग है । वह अपने साथियों से पृथक नहीं है, किंतु कार्यों तथा विचारों के उन मौलिक नियमों के द्वारा जो मानव समाज की जड़ हैं उसका उनसे घनिष्ट सम्बन्ध है ।

मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वाह्य पदार्थों को नहीं बद्‌ल सकता, किन्तु अपनी इच्छाओं को बद्‌ल सकता है, और ऐसा वद्‌ल सकता है कि वाह्य पदार्थ उसके अनुकूल हो सकते हैं । वह दूसरे के कार्यों को अपनी इच्छानुसार नहीं वना सकता, किंतु वह अपने कार्यों को उनके अनुसार कर सकता है वह अपनी वाह्य परिस्थिति की दीवाल को जिससे वह घिरा हुआ है नहीं तोड़ सकता, किंतु अपनी मानसिक परिधि को वढ़ाकर उसमें से अपने लिए वाहर निकलने का मार्ग

निकाल सकता है। विचारों के अनुसार घटनाएँ होती हैं। जैसे विचार होंगे, वैसी-ही घटनाएँ होंगी। अपने विचारों को बदल दो, बाह्य पदार्थ भी बदल जांयगे और नवीन रूप धारण करलेंगे। जैसा शीशा होगा, वैसा ही उसमें दिखाई देगा। साफ़ शीशे में साफ़ दिखाई देगा और मैले में मैला। धुंधले शीशे में धुंधला प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार अशांत मन से संसार का बुरा रूप प्रकट होता है। मन को वश में करलो, उसको शांत और स्थिर बना लो, तो संसार बहुत ही सुन्दर दिखाई देगा।

मनुष्य को अपने मानसिक जगत में सर्व शक्ति प्राप्त है। वह चाहे तो अपने मनको पूर्ण और पवित्र कर सकता है, परंतु बाह्य जगत में दूसरों के मन पर उसे कोई अधिकार नहीं है। तुम अपने मन के राजा हो। उसे जिस रूप में चाहो लगा सकते हो, परंतु जो कार्य तुम बाह्य में करलोगे उस के प्रभाव को दूर करना तुम्हारी शक्ति से बाहर है। अतएव इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि मनुष्य अपने मन को शिक्षित बनावे। उसी समय उसके कार्य उत्तम होंगे।

बाह्य वस्तुओं और कार्यों को बदल देना तुम्हारी शक्ति से बाहर है। एवं बाह्य वस्तुएं और कार्य तुम्हें हानि पहुंचाने में असमर्थ हैं। तुम्हारे सुखों अथवा दुःखों का कारण तुम्हारे भीतर है, अर्थात् तुम्हारा मन है। जो दुःख तुम्हें दूसरों के द्वारा मिलता है, वह तुम्हारे ही कार्यों का प्रतिफल है तथा तुम्हारे ही विचारों का प्रतिबिम्ब है। कारण स्वयं तुम्हीं हो। दूसरे लोग जिनको तुम दुःख का कारण समझ रहे हो, वे कारण

नहीं हैं, किंतु यंत्र मात्र हैं। भाग्य क्या वस्तु है? तुम्हारे कर्मों और कार्यों का प्रतिफल है। जैसा बीज बोया जाता है, वैसे ही फल की प्राप्ति होती है। जैसे मनुष्य कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे सुख दुःख मिलता है। धर्मात्मा पुरुष को कोई दुःख नहीं दे सकता, कोई उसकी शांति को भंग नहीं करसकता। वह दूसरों के प्रति मैत्री भाव रखता है, इसी से दूसरे उसे दुःख नहीं दे सकते यदि कोई कभी किसी प्रकार का दुःख देने का उद्योग भी करता है तो उससे उसको कोई हानि नहीं होती उल्टा दुःख देने वाले को हानि होती है। मनुष्य को भलाई करने से बल और आनंद प्राप्त होता है और वह शांत और गम्भीर रहता है।

राम गोविंद को गाली देता है, उसकी निन्दा करता है। गोविंद को गाली से अथवा निंदा से कोई हानि नहीं पहुंचती। हानि राम के उसके प्रति बुरा भाव रखने में है। मनुष्य स्वयं अपने लिये दुःख उत्पन्न करता है। जबतक वह कार्य की प्रकृति और शक्ति से अपरिचित रहता है, तबतक दुःख उठाता है। वह समझता है कि अमुक कार्य से मुझे हानि पहुंची है, यह उसका भ्रम है। कार्य में हानि पहुचाने की शक्ति नहीं है। कार्य से यदि हानि पहुंचती है, तो केवल उसके करने वाले को न कि दूसरे को। जिस मनुष्य की निंदा की जाती है, वह वस्तु स्वभाव से अपरिचित होने के कारण आवेश में आ जाता है और इस बात का भरसक प्रयत्न करता है कि किसी प्रकार उस निंदा को मिटावे। परिणाम यह होता है कि निन्दा को रोकने के स्थान में वह उसे सत्य का रूप देता है। उसे निंदा सुनकर जो कुछ दुःख होता है, वह निंदा से नहीं, किन्तु इससे

कि निंदा को उसने किस भाव से ग्रहण किया। विजयी मनुष्य को दूसरों की कृति से कुछ भी दुःख नहीं होता, वह अटल और अचल रहता है। उसके गंभीर मन में किसी प्रकार की अशांति नहीं होती। जिस प्रकार सूर्य पर धूल फेंकने से कोई सूर्य को गदला नहीं कर सकता उसी प्रकार विजयी मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। वह इन बातों की परवा भी नहीं करता। चाहे लोग उसकी प्रशंसा करें चाहे निंदा करें, उसको किसी प्रकार का विचार नहीं होता। बुद्धदेव भी इसी अवस्था की प्राप्ति के लिए नित्य अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे। वे कहा करते थे कि जिस मनुष्य के मन से ये विचार नहीं निकले हैं कि मुझे अमुक व्यक्ति ने धोखा दिया, अमुक ने मेरा निरादर किया, वह अभी विजयी नहीं हुआ है, उसने अभी सत्य को नहीं प्राप्त किया है।

जिस प्रकार दूसरे मनुष्य के शब्दों अथवा आचरण से हमको हानि नहीं पहुंच सकती, उसी प्रकार वाह्य परिस्थितियों से हमें कोई हानि नहीं पहुंच सकती। परिस्थितियां स्वयं कुछ नहीं हैं, न वे अच्छी हैं और न बुरी। मनुष्य अपने मन से ही उन्हें अच्छा बुरा बनाता है। प्रायः लोग कहते हैं कि भाई क्या करें, हमें तो बन्धनों ने जकड़ रक्खा है, हमें अवकाश नहीं है, हमारा कुछ प्रभाव नहीं है, हमें घर गृहस्थी के झगड़ों से छुट्टी नहीं मिलती, नहीं तो हम बड़े बड़े काम कर लेते। उनका ऐसा कहना मिथ्या है। काम करने वाले को कोई चीज़ नहीं रोक सकती। बाधक यदि कोई वस्तु है तो स्वयं उसका मन है। जब तक वह समझता रहता है कि परिस्थितियां बाधक हैं तभी तक वे बाधक हैं। जिस समय यह विचार

उसके मनसे निकल जाता है उसी समय वे सहायक हो जाती हैं। मनुष्य ही सब कुछ है, उसे अपने विचारों को ठीक रखना चाहिए। यदि उसका मन ठीक है तो परिस्थितियां उसे तनिक भी हानि नहीं पहुंचा सकतीं। जो मनुष्य परिस्थितियों की शिकायत करता है, वह अभी मनुष्य ही कहलाने के योग्य नहीं है। आवश्यकता उसे स्वयं ठोक पीट कर मार्ग पर ले आएगी। परिस्थितियां निर्बल मनुष्य को ही सताती हैं प्रबल मनुष्य का वे बाल भी बांका नहीं कर सकतीं।

बाह्य वस्तुओं के कारण हम स्वतंत्र व परतंत्र नहीं हैं। हमारे विचार ही हमें स्वतंत्र व परतंत्र बनाए हुए हैं। हम चाहें तो अपने विचारों से स्वर्ग को नरक बनादें और चाहें तो नरक को स्वर्ग करदें। यही दुनिया हमें दुःख, भय और आपत्ति का घर मालूम होती है और चाहें तो यही दुनिया सुख सम्पत्ति का धाम हो जाए। सुख दुःख मन की अवस्थायें हैं। जब तक मनुष्य एक वस्तु में दुःख मानता रहता है, वह दुःख दायक बनी रहती है। जिस समय यह विचार उसके मन से निकल जाता है, वही वस्तु सुख दायक हो जाती है। मनुष्य बंदीग्रह में रहता हुआ भी, स्वतंत्रता लाभ कर सकता है और स्वतंत्र रहता हुआ भी परतंत्रता के बंधन में जकड़ा रह सकता है।

जबतक मनुष्य बाह्य अवस्थाओं और परिस्थितियों से भय भीति रहता है, तब तक वह बंधन में जकड़ा रहता है, उसे सच्चे ज्ञान का अनुभव नहीं हो सकता, परंतु जब उसके विचार शुद्ध और पवित्र हो जाएंगे, उसे परिस्थितियों का तनिक भी भय नहीं रहेगा, तब वह स्वतंत्रता लाभ करेगा और उसे अपने जीवन के उद्देश्यों में सफलता प्राप्त हो जाएगी।

३—आदत-उसकी परतंत्रता और उसकी स्वतंत्रता।

नुष्य आदत का गुलाम है। फिर क्या उसे स्वतंत्र कहा जा सकता है? हाँ, निश्चय से वह स्वतंत्र है। वह जीवन तथा उसके नियमों का निर्माता नहीं है। वे सदैव से हैं। मनुष्य अपने को उन नियमों से वेष्ठित पाता है। उस में उनके समझने और तदनुसार चलने की शक्ति है। उसमें नियम बनाने की शक्ति नहीं है, परंतु हाँ, उसके समझने की उसमें शक्ति है। प्राकृतिक नियमों के एक अंशमात्र को बनाने की भी शक्ति मनुष्य में नहीं है ये अटल और अचल हैं। न कोई उन्हें बना सकता है और न कोई उन्हें बिगाड़ सकता है। मनुष्य केवल उनका पता लगाता है उनको बनाता नहीं है। संसार में जो कुछ दुःख या क्लेश है, वह प्राकृतिक नियमों के ठीक ठीक न समझने के ही कारण है। उनका भंग करना ही मूर्खता और बंधन का कारण है। एक चोर और डाकू जो अपने देश के नियमों का उल्लंघन करता है और एक सज्जन और भला मनुष्य जो नियमानुसार चलता है, इन दोनों में स्वतंत्र कौन है? एवं जो बिना भले बुरे का विचार किए ही जो मन में आता है सो करता है, वह स्वतंत्र

है या बुद्धिमान मनुष्य जो केवल उसी काम को करता है जिसे अच्छा समझता है।

मनुष्य अपनी प्रकृति को नहीं बदल सकता, परंतु हाँ, यदि वह चाहे तो अपनी आदतों को बदल सकता है। वह अपनी प्रकृति के नियमों में तनिक भी परिवर्तन नहीं कर सकता, किंतु अपनी आदत को उस नियम के अनुसार बना सकता है। वह उससे बच नहीं सकता, किन्तु उसका भला बुरा प्रयोग कर सकता है। जिस प्रकार विज्ञान वेत्ता और अविष्कार करनेवाले मनुष्य पौद्गलीक शक्तियों को अपने वश में करके नाना प्रकार के लाभ उठाते हैं, उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य अपनी मानसिक शक्तियों को अपने वश में करके लाभ उठा सकते हैं। बुरा आदमी आदत का गुलाम होता है, परंतु भला आदमी उसका मालिक होता है और उसे सद्मार्ग में लगाता है। परंतु स्मरण रहे वह उसका बनाने वाला अथवा बिना सोचे समझे अंधाधुंध चलाने वाला नहीं होता है, किंतु उसको सद्मार्ग पर लगाने वाला होता है। वही मनुष्य बुरा है जिसके विचार और कार्य बुरे होते हैं और वही मनुष्य भला है जिसके विचार और कार्य अच्छे हैं। यदि बुरा मनुष्य अपने बुरे विचारों की आदत को छोड़ दे, तो वह भला हो सकता है। ऐसा करने से वह नियम को नहीं बदलता, किंतु अपने को बदलता है और नियम के अनुसार बनाता है। इन्द्रिय सुखों में लवलीन न होकर वह सदाचार के सिद्धान्तों का पालन करता है। उच्च विचार करने से वह नीच और गंदे विचारों पर विजय प्राप्त कर लेता है। ऐसी दशा में, आदत का नियम तो ज्यों का त्यों

बना रहता है, परंतु आत्म-सुधार करने से और नियम के अनुसार चलने से वह बुरे से भला बन जाता है।

पुनरावृत्ति का नाम आदत है। किसी विचार वा कार्य अथवा अनुभव के पुनः पुनः करने से वे उसके स्वभाव वा शरीर के अंग बन जाते हैं। दृढ़ आदत का नाम शक्ति और योग्यता है। मनुष्य का जो रूप आज है, वह लाखों और करोड़ों विचारों का परिणाम है। उसका यह रूप एक ही दिन में नहीं, किंतु प्रतिदिन बनता रहता है। उसके विचार से ही उसके चरित्र का पता लगता है। विचार या कार्य करने की जैसी आदत मनुष्य में पड़ जाती है वैसा ही वह बन जाता है।

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य विचारों और कार्यों से बना हुआ है। जैसा पहले कहा जा चुका है, पुनः पुनः किसी विचार या कार्य के करते रहने से वह विचार या कार्य उसके शरीर का अंग बन जाता है। फिर चाहे मनुष्य किसी भी अवस्था में क्यों न हो, वह विचार और कार्य बराबर अपने आप होता रहता है, और कुछ काल के पश्चात् वह इतना दृढ़ हो जाता है कि फिर उसको मन से दूर करना कठिन तथा असाध्य हो जाता है। यही हाल सब आदतों का है, चाहे वे भली हों चाहे बुरी। जब आदतें बुरी पड़ जाती हैं, तो मनुष्य बुरी आदत वाला कहलाता है और जब आदतें अच्छी पड़ जाती हैं, तब वह अच्छी आदतों वाला कहलाता है।

जितने भी मनुष्य हैं वे सब अपनी आदतों के अर्थात् अपने बार बार के विचारों और कार्यों के आधीन हैं और रहेंगे चाहे आदतें कैसी ही क्यों न हों। यह जानकर विचार शील मनुष्य

अच्छी आदतों के आधीन होना अर्थात् उनका ग्रहण करना पसंद करते हैं, उससे उन्हें सुख आनंद और स्वतंत्रता प्राप्त होती है। इसके विपरीत बुरी आदतों के ग्रहण करने से दुःख कष्ट और परतंत्रता के जाल में पड़ना होता है।

आदत का नियम बड़ा लाभदायक है, कारण कि यदि आदत अच्छी पड़ गई तो मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य और विचार स्वमेव अच्छे होते रहते हैं। उसे अच्छे कार्यों के करने में अथवा अच्छे विचारों को मन में लाने में तनिक भी श्रम या कठिनाई नहीं होती। वह सदा अच्छे काम करता रहता है और उनके करने में उसे आनंद प्राप्त होता रहता है। यह देखकर लोग कह दिया करते हैं कि मनुष्य जन्म से भला वा बुरा होता है, उस में स्वतंत्रता विलकुल नहीं होती, वह अंधशक्ति है। इस में संदेह नहीं कि मनुष्य मानसिक शक्तियों को कल है, अथवा ठीक ठीक यों कह सकते हैं कि मनुष्य उन शक्तियों का समुदाय है, परंतु वे शक्तियां अंधी नहीं हैं। मनुष्य उनको सद्मार्ग पर लगा सकता है। सारांश यह है कि यदि मनुष्य चाहे तो अपनी आदतों को फिर से बना सकता है और सुधार सकता है। यद्यपि वह जन्म से ही अपना चरित्र अपने साथ लेकर आता है और वह चरित्र अनेक भवों और जन्मों में बनता रहा है, तथापि वर्त्तमान जीवन में नवीन अनुभवों से धीरे धीरे वह और भी अधिक उन्नति कर सकता है। मनुष्य देखने में चाहे बुरी आदतों के कारण कितना ही असमर्थ हो गया हो परंतु यदि वह चाहे तो उनको दूर करके अच्छी आदतों को ग्रहण कर सकता है और जब उसमें अच्छी आदतें आजायेंगी, तो उनके कारण उसे सदा सुख मिलेगा।

जो विचार मनुष्य के अंतर्गत हैं, यदि वह चाहे तो उसे दूर कर सकता है, परन्तु मनुष्य बुरी आदत का उस समय तक परित्याग नहीं करता जब तक कि वह उसको सुखकर समझता है। जब उससे उसको दुःख होने लगता है, तब वह कहीं उसके छोड़ने का उपाय करता है और अंत में अच्छी आदत डालने के कारण बुरी आदतों को सदैव के लिए छोड़ देता है।

कोई मनुष्य किसी प्रकार बंधन में नहीं है। जिस नियमसे कोई मनुष्य अपने को बंधन में पाता है वही नियम उसको स्वतंत्र भी कर सकता है। इसको जानकर मनुष्य को इसके अनुसार चलना चाहिये। पुराने विचारों और कार्यों को त्याग कर नवीन विचारों और कार्यों को गृहण करना चाहिए। इस काम में चाहे कितना ही समय लगे इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। समय के अधिक लगने से निराश न हो जाना चाहिए। बुरी आदतों को छोड़ने और उनके स्थान में अच्छी आदतों को ग्रहण करने में केवल समय की ही आवश्कता है। यदि धैर्य और दृढ़ता के साथ श्रम और उद्योग किया जाएगा, तो अवश्य ही सफलता होगी। कारण कि जब बुरी आदत इतनी दृढ़ होजाती हैं तो अच्छी आदत तो और भी अधिक दृढ़ हो जाएगी। आदत का छोड़ना और गृहण करना दृढ़ संकल्प पर निर्भर है। जिस मनुष्य का यह विचार है कि मैं इस बुरी आदत को नहीं छोड़ सकता वह कदापि उसे नहीं छोड़ सकता। जब तक मनुष्य दृढ़ प्रतिज्ञ नहीं है तब तक बुरी आदतों का छूटना कठिन है। जब तक कमज़ोरी का विचार मन से दूर नहीं किया जाएगा तब तक संसार में कोई भी कार्य नहीं हो सकता। ममुष्य के कार्य में बाधक उसकी आदत नहीं है

किन्तु उसके हृदय की निर्बलता है। जब तक मनुष्य का यह विश्वास है कि बुरी आदत का छूटना असंभव है, तब तक वह कदापि उसे नहीं छोड़ सकता, परन्तु इसके विपरीत जिस मनुष्य का विश्वास है कि बुरी आदत छूट सकती है और उसके लिए वह उद्योग करता है, उसके कार्य में फिर कोई भी चीज़ बाधा नहीं डाल सकती है।

जिस विचार ने मनुष्य को दास बना रक्खा है वह यह है कि मैं अपने पापों को नहीं त्याग सकता। इस विचार ने ही वास्तव में मनुष्य की स्वतंत्रता को हरण कर रक्खा है और पापों की ओर उसकी प्रवृत्ति कर रक्खी है। जब तक मनुष्य इस विचार को मन से नहीं निकालेगा, तब तक वह कदापि बुराई का त्याग नहीं कर सकता और न भलाई को ग्रहण कर सकता है।

इस प्रकार के विचारों और विश्वासों से मनुष्य अपने आप को बंधन में डाले हुए है। इसके विपरीत विचारों और विश्वासों से ही वह अपने आपको स्वतंत्र बना सकता है मन के बदलने से मनुष्य का चरित्र उसकी आदतें और उसका जीवन तक बदल सकता है। मनुष्य अपना स्वामी और मुक्तिदाता आप है। वह आप ही अपने को दासत्व के बंधन में डालता है और आप ही उससे मुक्त होता है। लाखों वर्षों से वह इसमें लगा हुआ है कि कोई उसे मुक्तिदाता मिले, परन्तु अभी तक वह बंधन से मुक्त नहीं हुआ। मनुष्य का सब से बड़ा मुक्तिदाता स्वयं उसी के भीतर विद्यमान है, वह सत्य है। सत्य ही भलाई है। जिसके विचार और कार्य निरंतर भले हैं, वही वास्तव में भला मनुष्य है।

आदत, उसकी परतंत्रता और उसकी स्वतंत्रता।

मनुष्य अपने भीतरी बुरे विचारों के अतिरिक्त बाह्य में किसी वस्तु से भी बंधा हुआ नहीं है। यदि मनुष्य को स्वतंत्र होने की इच्छा है तो उसे चाहिए कि वह नीच और पामर विचारों को अपने मन से सदैव के लिए निकाल डाले और अच्छे विचारों को स्थान दे जिससे उसे सुख की प्राप्ति हो।

आदतें ही हमें बंधन में डालती हैं और आदतें ही हमको स्वतंत्र करती हैं। पहले विचारों की आदत पड़ती है, पीछे कार्य की। बुरे विचारों को अच्छे विचारों में बदल दो, कार्य अवश्य ही अच्छे हो जाएँगे। यदि बुरे विचारों की आदत डालते जाओगे, तो अधिक बंधन में पड़ते जाओगे, परन्तु यदि इसके विपरीत अच्छे विचार करते रहोगे, तो अच्छा फल मिलेगा, और स्वतंत्रता लाभ करोगे।

४–शारीरिक अवस्थाएँ।

स प्रकार मनुष्यों के मानसिक दुःखों के दूर करने के लिए सैंकड़ों धर्म पाए जाते हैं, उसी प्रकार शारीरिक रोगों के दूर करने के लिए भी आज हज़ारों औषधालय और चिकित्सालय देखने में आते हैं, जिनसे इस बात का साफ़ पता लगता है कि देश में रोगों की बाहुल्यता है। यद्यपि इन चिकित्सालयों से कुछ समय के लिए रोगों से निवृत्ति होती है, अर्थात् रोग दूर हो जाते हैं, परन्तु रोगों का समूल नाश नहीं होता। रोग ज्यों के त्यों बने रहते हैं, वरन् बढ़ते जाते हैं। एवं इतने धर्मों के होते हुए भी संसार में दुःख और शोक का अभाव नहीं होता।

जिस प्रकार शोक पाप आदि मानसिक दुःखों का धार्मिक उपदेशों से अथवा धर्म शास्त्रों से विनाश नहीं होता, उसी प्रकार शारीरिक रोगों और दुःखों का चिकित्सा और औषधियों से नाश नहीं होता। हमारे शारीरिक रोगों का मन से गहरा सम्बन्ध है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि उनका शरीर से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। रोगों का प्रारम्भ आदि में शारीरिक अवस्था के ही कारण होता है। यद्यपि उस अवस्था

का कारण मानसिक होता है । उदाहरण के लिए बहुत से रोग अस्वच्छता अर्थात् मैलेपन के कारण होते हैं, परंतु मैलेपन की आदत मन की अस्वच्छता के कारण होती है । मनुष्य का मन नाना प्रकार की कुत्सित इच्छाओं से संतप्त रहता है और उन्हीं के कारण उसका शरीर रोगों से ग्रसित रहता है । काम क्रोधादि कषायों से शरीर को हानि पहुँचती है, यह बात प्रत्यक्ष देखने में आती है । मानसिक व्यथा से शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती रहती है । पशु अपनी पाश्विक अज्ञान अवस्था में प्रायः शारीरिक रोगों से मुक्त रहते हैं, कारण कि उन्हें किसी प्रकार का मानसिक दुःख नहीं होता। वे अपनी बाह्य परस्थिति के अनुसार होते हैं । उनके ऊपर कोई नैत्तिक भार नहीं होता और न उन्हें इस बात का ज्ञान होता है कि पाप किसे कहते हैं। वे दुःख शोक, संताप, पश्चाताप और निराशा आदि मानसिक दुःखों के भयंकर आक्रमण से सुरक्षित रहते हैं और इसी कारण वे शारीरिक रोगों में ग्रसित नहीं होते। ये ही मानसिक दुःख मनुष्य की शांति नाश करनेवाले होते हैं । ज्यों ज्यों मनुष्य उन्नति करता जाता है और ईश्वर के निकट पहुँचता जाता है, उसके दुःख और क्लेश दूर होते जाते हैं और वह पाप, शोक, और पश्चात्ताप से मुक्त होता जाता है । जिस समय वह मानसिक दुःखों से मुक्त हो जाएगा, शारीरिक दुःख उसमें नाम को भी न रहेंगे और वह पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लेगा ।

शरीर मन के अनुरूप होता है। शरीर से मन का पता, लगता है। किसी मनुष्य की आकृति देखकर यह मालूम किया जा सकता है कि उसके मन में क्या है । क्रोधी मनुष्य की आंखों से पता लग जाता है कि वह क्रोध से भरा हुआ है ।

कामी मनुष्य की सूरत उसके मन की अवस्था को बता देती है। जैसा मन में होता है, वैसा बाहर आकृति से प्रकट हो जाता है। अतएव मनुष्य के जितने भी रोग होते हैं, अथवा संसार में जितने भी रोग हैं उन सब का कारण मन है।

मन की समता अथवा धर्म और सदाचार की पूर्णता से ही शारीरिक स्वास्थ्य बनता है। जिस प्रकार किसी पुष्टि कारक औषधि का सेवन करने से शरीर में पुष्टि आ जाती है, उसी प्रकार मन को स्वास्थ और शांत बनाने तथा शुद्धाचरण से मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ उत्तम हो जाता है। उसकी शक्तियां ठीक और सुचारू हो जाती हैं और यदि पूर्ण स्वास्थ लाभ नहीं भी होता, तो इतना तो अवश्य है कि उसमें शारीरिक विकार नहीं रहते।

जो मनुष्य बहुत दिनों से रोगी है वह चाहे मन को नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार चलाने लगे, तो भी उसे स्वास्थ लाभ करने के लिये कुछ समय की आवश्यकता है। एकदम स्वास्थ लाभ नहीं कर सकता। जिस प्रकार धर्म मार्ग को ग्रहण करते ही कोई मनुष्य धर्मात्मा नहीं बन जाता, किन्तु धीरे धीरे उस अवस्था को प्राप्त करता है और प्रायः उसकी प्राप्ति के लिये समय समय पर उसे अनेक कष्ट भी सहन करने पड़ते हैं, उसी प्रकार पूर्ण स्वास्थ लाभ करने के लिये समय और श्रम दोनों की आवश्यकता है परंतु यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य लाभ उसी समय से होने लगता है।

यदि मनुष्य का मन सुदृढ़ हो, तो उसकी शारीरिक अवस्था उसके आधीन रहेगी। वह शरीर को मन पर उछलता न देगा,

अर्थात् उसके मन से यह विचार निकल जाएगा कि शरीर सबसे अधिक महत्व पूर्ण वस्तु है। शरीर में दुःख रहने पर भी मन शरीर के आधीन नहीं हो सकता, उन्नति कर सकता है। शरीर में नाना प्रकार के रोग होने पर भी मनुष्य सुखी और बलवान् हो सकता है और दूसरों को लाभ पहुंचा सकता है। वैद्य डाक्टर प्रायः कहा करते हैं कि जब तक स्वास्थ अच्छा न हो, मनुष्य सुखी नहीं हो सकता और न उसके जीवन से दूसरों को लाभ पहुंच सकता है, परंतु उनका यह कहना मिथ्या है कारण कि प्रत्येक विभाग में सैकड़ों मनुष्य जिन्होंने बड़े २ कार्य किए हैं रोगों में ग्रसित थे। आज कल भी अनेक दृष्टांत ऐसे मिलते हैं कि कभी कभी तो शारीरिक व्यथा के कारण मन उत्तेजित हो जाता है और कार्य करने में बड़ी सहायता मिलती है। यह समझना कि स्वास्थ्य के बिना कोई मनुष्य सुखी नहीं हो सकता और न दूसरों को लाभ पहुंचा सकता है, तन को मन से उच्च समझना है और आत्मा को शरीर के आधीन बनाना है।

जिन मनुष्यों का मन दृढ़ होता है वे कभी शरीर की चिंता नहीं करते चाहे वह कितना ही रोगी क्यों न हो। वे निरन्तर कार्य में तत्पर रहते हैं और कार्य करते समय उन्हें ऐसा मालूम होता रहता है कि मानों उनका शरीर है ही नहीं। शरीर की अधिक चिन्ता न करने से केवल मन ही दृढ़ और स्वास्थ नहीं होता किन्तु शरीर भी स्वस्थ और नीरोग हो जाता है। यदि हमारा शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ न भी हो, तो भी हमारा मन अवश्य ही स्वस्थ रह सकता है और स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर

का कारण है अर्थात् मन के स्वस्थ रहने से शरीर अवश्य स्वस्थ होगा।

जिस मनुष्य का शरीर रोगी है उसकी दशा ऐसी शोचनीय नहीं है जैसा उस मनुष्य का जिसका मन रोगी है, कारण कि मन के रोगी होने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। शारारिक दुर्बलता की अपेक्षा मानसिक दुर्बलता अधिक शोचनीय है। संसार में ऐसे सैकड़ों मनुष्य हैं जो रोगी बने हुए हैं परन्तु वास्तव में शारीरिक रोग उनमें कोई भी नहीं है। उनका मन रोगी है। मन के कारण ही वे रोगों से पीड़ित मालूम होते हैं। यदि वे अपने मन को स्वस्थ और निरोगी बनालें, अपने मन से नीच और कुत्सित भावों को निकाल डालें, तो उन्हें ज्ञात हो जाएगा कि उनका शरीर भला चंगा है, उसमें किसी प्रकार का कोई रोग नहीं है।

जो मनुष्य हैं, और जिन्हें अपने को मनुष्य कहलाने का अभिमान है, उन्हें चाहिए कि वे शरीर और भोजन के विषय में कुत्सित विचारों को अपने मन से निकाल डालें। जिस मनुष्य का यह विचार है कि उत्तम भोजन भी स्वस्थ को बिगाड़ने वाला है उसे चाहिये कि वह अपना शारीरिक बल अपने मनोबल के द्वारा प्राप्त करे।

जो लोग यह समझते हैं कि अमुक पदार्थ स्वास्थ के लिये लाभदायक है और वह पदार्थ ऐसा है कि जो प्रायः लोगों को मिलता नहीं तो वे दुःखों को स्वयं अपने घर बुलाते हैं और बीमार पड़ते हैं। जो शाकाहारी होकर भी शाक पात खाने से डरते हैं और कहते हैं अमुक पदार्थ खाने से मंदाग्नि होती है,

अमुक शाक से दस्त आते हैं; अमुक फल वायला होता है, अमुक फल दर्द करता है, वे एक तो अपने पक्ष को आप गिराते हैं और दूसरे मांसाहारियों की दृष्टि में जो सब कुछ भक्षण कर जाते हैं, हँसी के पात्र होते हैं। जो मनुष्य भूख के समय फल खाने से भी डरता है, वह अभी भोजन की प्रकृति और रहस्य से अनभिज्ञ है। भोजन का कार्य शरीर की रक्षा करना है न कि उसको गिराना। कुछ लोग हल्के सादे और निरामिष भोजन को भी हानिकार समझते हैं। यह उनका भ्रम है और भ्रम ही उनके दुःखों का कारण है। हल्के सादे भोजन से कभी रोग नहीं होता। भोजन से रोग यदि कभी होता भी है, तो अधिक भोजन करने से होता है और अधिक भोजन करना मानसिक निर्बलता अर्थात् लोलुपता को प्रकट करता है। अतएव हमको चाहिये कि हम पापों, कुत्सित विचारों और इन्द्रिय लोलुपता से बचे रहें।

जो मनुष्य तनिक सी पीड़ा के कारण व्याकुल हो जाते हैं, वे निरे बालक हैं, और उनमें चरित्र की बड़ी भारी कमी है। बार बार किसी पीड़ा का चिंतवन करने से बाह्य में भी प्रायः लोग उसी का ज़िकर करते रहते हैं और निरंतर उसका ध्यान आते रहने से वह बात मन पर जम जाती है और मन को कमज़ोर बना देती है। जिस प्रकार लोग दुःख और पीड़ा का विचार किया करते हैं, यदि उसी प्रकार सुख और स्वास्थ्य के विषय में विचार किया जाए, और उनके विषय में परस्पर में चर्चा की जाए, तो इससे लाभ भी हो और चित्त भी प्रसन्न रहे।

हमको सदैव प्रसन्न चित्त रहना चाहिए। जो हमसे घृणा करते हैं उनसे भी हमें प्रेम करना चाहिये। चाहे लोग हमसे

घृणा और द्वेष करें, परन्तु हमें ऐसी घृणित बातों का सर्वथ त्याग कर देना चाहिये। दुःखी और दरिद्री लोगों के बीच में रहकर भी हमें दुःख भूल जाना चाहिये और आनन्द पूर्वक काल यापन करना चाहिये। एवं लोभी और लालची मनुष्यों के साथ रहकर भी लोभ से बचे रहना चाहिये।

सुख और स्वास्थ के लिये नैत्तिक सिद्धांत बड़े ही उपयोगी हैं। वे मनुष्य को सुमार्ग पर लगा देते हैं। यदि मनुष्य उनको भली भांति समझ ले, तो वह अपने जीवन की छोटी से छोटी घटना को भी समझ सकता है। वे मनुष्य के भोजन को नियमानुकूल बना देते हैं और उनके अनुसार प्रवृत्ति करने से इस प्रकार के व्यर्थ विचार उसके मन से बिलकुल निकल जाते हैं कि अमुक पदार्थ हानिकर है। यदि मनुष्य निरंतर यही सोचा करे और इसी प्रकार भय किया करे तो चिंता नित्य बढ़ती जायेगी और शरीर कृश होता जायगा। निःसन्देह भोजन सदैव भूख के अनुसार करना चाहिये। ऐसा करने से जितने भी प्राकृतिक पदार्थ हैं, वे सब गुणकारी ही प्रतीत होंगे।

इस प्रकार शारीरिक अवस्थाओं पर विचार करने से हमारा विचार एकदम उन नैत्तिक गुणों की ओर जाता है जो उसकी रक्षा करते हैं। जिनका मन और आचरण अच्छा है उनका शरीर भी अच्छा है। दृढ़ सिद्धान्तों पर न चलकर केवल झूठे विचारों और कपोल कल्पित सिद्धान्तों पर जीवन घटनाओं का आधार मान लेने से मनुष्य गड़बड़ी में पड़ जाता है, परन्तु यदि नैत्तिक सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाए तो जीवन की प्रत्येक घटना का भली भांति ज्ञान हो सकता है।

नैतिक सिद्धान्तों पर चलने से ही मनुष्य पग पग पर नियम और सदाचार को देखता है। जिस प्रकार चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी ओर खींचता है उसी प्रकार नैतिक सिद्धान्त भी जीवन घटनाओं को अपनी ओर खींचते हैं।

शरीर को नीरोग बनाने से तो यही अच्छा है कि उसका विचार ही न किया जाए। शरीर को मन के आधीन रक्खा जाए न कि मन को शरीर के आधीन। इन्द्रिय सुखों को घटा देना चाहिये। दुःख के समय दुःखी और व्याकुल न हो जाना चाहिये। भावार्थ नैतिक सिद्धान्तों पर चलना शरीर को नीरोग करने की अपेक्षा अच्छा है। यही शरीर को स्वस्थ रखने का मार्ग है और यही मानसिक शक्ति और आत्मिक सुख प्राप्त करने का समीचीन उपाय है।

५—निर्धनता ।

प्रत्येक युग में अनेक महात्माओं ने धन सम्पदा का परित्याग करके निर्धनता का आश्रय लिया है कि जिससे वे अपने उच्च अभीष्ट को पूर्णतया सिद्ध कर सकें । जब यह बात है तो फिर निर्धनता को क्यों लोग ऐसा बुरा समझते हैं । जिस निर्धनता का महापुरुष हृदय से स्वागत करते हैं और जिसे ईश्वरीय कृपा समझते हैं, फिर क्यों उस निर्धनता को संसारी जन आपत्ति और भार रूप समझते हैं । इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही सरल है । प्रायः देखने में आता है कि जहां निर्धनता होती है वहां सर्व प्रकार के पाप और दुर्गुण पाए जाते हैं । आज कल के बड़े बड़े नगर दुर्गुणों के लिए प्रसिद्ध स्थान बन रहे हैं, परन्तु बुराई का कारण निर्धनता नहीं है, किन्तु पाप है । पाप को निकाल डालो फिर निर्धनता सुन्दर मालूम होगी और उससे अच्छे अच्छे कार्य साधन होंगे । महापुरुष निर्धनता को मानसिक उन्नति का मुख्य कारण समझते हैं । उनकी निर्धनता सबको प्रिय और सुन्दर मालूम होती है, यहां तक कि निर्धन साधु सन्यासियों को देखकर बड़े बड़े धनी मानी भी सन्यास धारण कर लेते हैं । इससे भी यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि

निर्धनता बुराई का कारण नहीं है । लोग बुराई मिली हुई निर्धनता को निर्धनता समझते हैं और उसे बुराई मानते हैं। यह उनकी भूल है।

महात्मा कानफ्यूसियस ने अपने धनी शिष्यों को उच्च कोटि की भलाई का दृष्टान्त देने के लिए अपने एक निर्धन शिष्य यानहुई का नाम लिया था। यद्यपि वह इतना दीन और निर्धन था कि चावलों का मांड पीकर और एक टूटी फूटी झोंपड़ी में रहकर अपना जीवन निर्वाह करता था, परन्तु वह कभी किसी से इस बात की शिकायत नहीं करता था । जो कुछ उसके पास था उसी में उसको सन्तोष था। यदि कोई दूसरा मनुष्य ऐसा निर्धन होता तो रात दिन दुःखी और क्लेशित रहता, परन्तु उसने अपने मनकी शांति को किसी प्रकार भी भंग नहीं होने दिया। निर्धनता से चरित्र बिगड़ता नहीं किंतु सुधर जाता है। यानहुई की निर्धनता ने उसके गुणों को और भी अधिक प्रकाशमान कर दिया था । निर्धनता की अवस्था में ये गुण जितने सुन्दर मालूम होते हैं उतने धन ऐश्वर्य की अवस्था में नहीं मालूम होते।

प्रायः समाज सुधारक लोग निर्धनता को पाप का कारण बताया करते हैं और वे ही लोग कभी कभी धनवानों के दुर्गुणों का उल्लेख करते हुए धन सम्पदा को दुराचार का कारण बनाते हैं। जहां कारण है वहां कार्य अवश्य होगा। यदि धन दुराचार का कारण होता और निर्धनता पतन का कारण होती तो अब तक संसार के सब धनी लोग दुराचारी हो जाते और निर्धन लोग नीच और पतित हो जाते।

बुरा मनुष्य बुराई करने से कभी नहीं रुक सकता चाहे वह धनी हो चाहे निर्धन । भलाई करने वाला मनुष्य चाहे किसी अवस्था में हो सदा भलाई करेगा । यह सम्भव है कि कभी किसी अवस्था में बुराई जो छिपी हुई है वह प्रगट हो जाए, परन्तु कोई भी अवस्था बुराई को पैदा नहीं कर सकती ।

अपनी आर्थिक अवस्था से अरुचि होना, इसका नाम निर्धनता नहीं है । बहुत से आदमी ऐसे मिलेंगे जिनकी आमदनी हज़ारों रुपये है, तो भी वे अपने को निर्धन ही समझते हैं। वे समझते हैं कि हमें जो कुछ भी कष्ट है वह सब निर्धनता के कारण है, परन्तु सच पूछो तो उनके दुःख का कारण लोभ है । निर्धनता के कारण वे दुःखी नहीं हैं, किन्तु धन की लालसा के कारण । निर्धनता का विचार मन में ही पाया जाता है थैली में नहीं । जब तक मनुष्य धन की लालसा करता रहता है तब तक वह अपने को दुःखी दरिद्री ही समझता है और वास्तव में वह एक दृष्टि से निर्धन ही है, कारण कि लोभ लालच मानसिक निर्धनता है । लोभी और कृपण मनुष्य चाहे लखपती ही क्यों न हो, तो भी उतना ही निर्धन है, जितना कि एक द्रव्यहीन मनुष्य ।

इसके विपरीत बहुत से मनुष्य जो निर्धन और पतित अवस्था में हैं, इस कारण से दुःख उठाते हैं कि वे जिस अवस्था में हैं उसी में उन्हें संतोष है । उन लोगों की दशा बड़ी ही शोचनीय है जो जिस अवस्था में हैं, उसी में सन्तोष मान रहे हैं । अस्वच्छता, दुर्व्यवस्था, आलस्य और स्वार्थपरता

में लीन हैं और ऐसी संगति में पड़े हुए हैं कि जहां रात दिन उनके मन में गंदे विचार और उनकी जिह्वा पर घृणित शब्द आते रहते हैं, परंतु वे लोग इसी में सुख मानते हैं यहांपर भी निर्धनता से तात्पर्य मानसिक निर्धनता से है, अर्थात् जिनके मन बुरे विचारों में डूबे रहते हैं, वे ही निर्धन हैं। अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने मानसिक विकारों को दूर करदे, जिससे उसकी मानसिक निर्धनता दूर हो जाए। जब मनुष्य का अंतरंग विशुद्ध हो जाएगा तो फिर वह कभी भी नीच और पतित अवस्था में रहना पसंद नहीं करेगा। जब उसका मन ठीक तौर से काम करने लगेगा तब वह अपने घर को भी व्यवस्थित कर लेगा। तब उसे और उसके पड़ोसियों दोनों को इस बात का पता लग जाएगा कि उसने अपने आपको व्यवस्थित बना लिया है। उसकी बाह्य अवस्था से उसकी अंतरंग अवस्था का ज्ञान हो जाएगा।

उनमें कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं कि जो न तो किसी को धोका देते हैं और न अपनी बाह्य अवस्था को बिगाड़ते हैं तो भी वे निर्धन हैं। बहुत से मनुष्य निर्धनता की अवस्था में रहने में ही सन्तोष मान रहे हैं। वे सुखी, सन्तोषी और परिश्रमी हैं और उन्हें किसी बात की इच्छा नहीं है, परंतु उनमें से जो लोग अपनी अवस्था से दुःखी हैं और उसे सुधारने की अभिलाषा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे निर्धनता से प्रेरित होकर अपनी बुद्धि और शक्ति का प्रयोग करें। आत्म-सुधार और कर्तव्य पालन से वे उस उच्च जीवन को प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी वे इच्छा रखते हैं।

कर्त्तव्य पालन अर्थात् कार्य को उत्तम रीति से करने से केवल निर्धनता ही दूर नहीं होती; किन्तु धन, प्रतिष्ठा और सुख तीनों की वढ़ती होती है, और परम्परा परमानंद की प्राप्ति होती है। यदि इस पर गहरा विचार किया जाए तो मालूम होगा कि कर्त्तव्य पालन का जीवन की प्रत्येक उत्कृष्ट और उत्तम घटना से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसमें शक्ति, श्रम धैर्य, दृढता आत्म-निर्भरता और स्वार्थ त्याग आदि सभी गुण गर्भित हैं। एक वार एक मनुष्य से जिसने अपने कार्य में सफलता प्राप्त करली थी पूछा गया था कि आपकी सफलता का क्या कारण है। उसने उत्तर दिया कि मेरी सफलता का कारण यह है कि मैं प्रति दिन छह वजे सवेरे उठकर अपने काम में लग जाता हूं! वही मनुष्य सफलता, प्रतिष्ठा और महत्व प्राप्त कर सकता है जो श्रम पूर्वक अपने काम को करता है और दूसरों के काम में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालता।

प्रायः कहा जाता है कि जो लोग मिलों और कारखानों म काम करते हैं उनमें से वहुत से ऐसे हैं जो कार्य की अधिकता के कारण और कोई दूसरा कार्य नहीं कर सकते। इसके उत्तर में मेरा केवल यही कथन है कि जो लोग ऐसा करते हैं, वे वड़ी भारी भूल करते हैं। समय और अवसर सदैव तैयार रहते हैं और प्रत्येक मनुष्य के पास प्रति क्षण पाये जाते हैं। जो लोग अपनी अवस्था में सन्तोषी हैं वे कारखाने में श्रम पूर्वक काम कर सकते हैं और अपने घर में सुख और शांति पूर्वक रह सकते हैं, परन्तु जिनको अपनी वर्तमान अवस्था पर सन्तोष नहीं है, उन्हें चाहिये कि वे अपने अवकाश के समय को अपनी उन्नति में लगाएँ। उसका दुरूपयोग न करके सदुपयोग करें।

जो लोग बड़ी मिहनत करते हैं, उन्हें चाहिये कि वे अपने समय और परिश्रम का बड़ा ध्यान रक्खें। जो नवयुवक अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठना चाहता है, उसे उचित है कि वह शराब, तम्बाकू, नाच गान और विषय वासना का बिलकुल त्याग करदे। अपने अवकाश के समय को उन पुस्तकों और समाचार पत्रों के पढ़ने में लगावे जिन से उसका ज्ञान बढ़े। इतिहास देखने से मालूम होता है कि सैकड़ों लोगों ने इस प्रकार आत्म शिक्षण कर निर्धनता को काट दिया है। आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य जो चाहे कर सकता है। जो लोग अपनी पतित और घृणित अवस्था से असंतुष्ट हैं और उन्नति करना चाहते हैं, उनके लिये निर्धनता उत्तेजना का काम करती है अर्थात् निर्धनता उन्हें अधिक काम करने के लिये उत्तेजित करती रहती है। निर्धन मनुष्य का जैसा मन व चरित्र होगा उसी के अनुसार वह निर्धनता को अच्छी व बुरी समझेगा। यही हाल धन सम्पदा का है। किसी मनुष्य को धन सुखकर होता है और किसी को दुःखकर। महात्मा टाल्सटाय धन को आपत्ति समझते थे, और दुःख का कारण जानते थे। जिस प्रकार लोभी मनुष्य धन की लालसा करते हैं, उसी प्रकार वे निर्धनता की इच्छा रखते थे। नीच कर्म सदा बुरे होते हैं। उनसे बुरे कर्म करने वाला मनुष्य तो पतित हो ही जाता है, परंतु समाज पर भी उनका असर पड़ता है। यदि निर्धनता पर अच्छी तरह विचार किया जाये, तो ज्ञात होगा कि इससे मनुष्य पतित नहीं होता किन्तु उसमें मनुष्यत्व आजाता है।

६—मनुष्य का आत्मिक राज्य ।

मनुष्य अपने मन और जीवन पर निष्कंटक राज्य कर सकता है। यही उसका वास्तिक राज्य है, परन्तु उसका यह राज्य सृष्टि के बाहर नहीं है और न किसी प्रकार परिमित ही है। इसका सम्बन्ध जगत के प्राणी मात्र से है, तथा प्रकृति, सृष्टि और सृष्टि की की प्रत्येक घटना से है। जो मनुष्य इस राज्य पर पूर्ण अधिपत्य जमा लेता है, उसे जीवन का वास्तविक ज्ञान हो जाता है और उसकी बुद्धि का विकाश हो जाता है। उसे अन्य मनुष्य के हृदयों का पता लग जाता है और उसमें भलाई-बुराई में पहिचान करने की शक्ति आजाती है तथा कार्यों के ढंग और उनके परिणामों का भी पता लग जाता है।

वर्तमान में प्रत्येक मनुष्य पर नीच और निकृष्ट विचारों का अवश्य ही कुछ न कुछ प्रभाव है, परन्तु स्मरण रहे, इन कुत्सित और घृणित विचारों पर विजय प्राप्त करने से मनुष्य को अपने जीवन में विजय प्राप्त हो जाती है। मूर्ख और अज्ञानी लोग समझते हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु अपनी आत्मा पर अधिकार प्राप्त करना बड़ा कठिन है और वे अपना तथा दूसरों का सुख

केवल बाह्य पदार्थों में ही ढूंढा करते हैं, पर...
भ्रम है। सांसारिक पदार्थों से मनुष्य को कभी ...
नहीं मिल सकता, और न इनसे वास्तविक ज्ञान ही प्र...
सकता है। पाप पंक में लिप्त शरीर कभी सुख और शांति नहीं
पहुंचा सकता। इसके विपरीत ज्ञानी मनुष्य इस बात को भली
भांत समझते हैं कि जब तक अपने ऊपर अधिकार नहीं प्राप्त
हो जाता, तब तक बाह्य पदार्थ पर भी अधिकार नहीं हो सका।
जब अपने ऊपर पूर्ण अधिकार हो जाता है तब बाह्य पदार्थ
स्वमेव अपने आधीन हो जाते हैं। उनके लिए तनिक भी श्रम
और कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आत्म विजयी
मनुष्य सदा सुख भोगते हैं और अपने पापों से विनिर्मुक्त तथा
कषाय वासना से रहित होकर आत्म शुद्धि और आत्मबल की
प्राप्ति करते हैं।

मनुष्य अपने मन पर शासन कर सकता है और अपने
ऊपर अधिपत्य जमा सकता है। जब तक ऐसा नहीं होगा तब
तक उसका जीवन अपूर्ण और दुःखदाई रहेगा। मानसिक
शक्तियों से ही आत्म बल की प्राप्ति होती है और इन्हीं से
मनुष्य का स्वभाव बनता है। शरीर में स्वयंकार्य संचालन की
शक्ति नहीं होती। अपने शरीर पर शासन करने अर्थात् अपनी
कषाय और वासनाओं को अपने वश में करने से मानसिक
शक्ति अपने आधीन हो जाती है। अपनी आत्मा पर विजय
प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं है। इस विजय का प्राप्त
करना प्राणीमात्र का कर्तव्य है। अतीत काल से मनुष्य अपने
को बाह्य वस्तुओं का दास मानता चला आता है, परन्तु अब
वह दिन बहुत ही शीघ्र आने वाला है, कि जब उसके ज्ञान

वह अपने को अपनी अपवित्र और अशि-
के वश में पायेगा। उस दिन वह अपनी घोर
सचेत होकर आत्मिक सिंहासन पर आरूढ़ होगा।
ब उसे अपनी विषय वासनाओं के आधीन रहने की आवश्य-
कता नहीं रहेगी। वे स्वमेव उसके आधीन हो जायेंगी।
आत्म विजय करने से मनुष्य मानसिक राज्य का अधिपती
बन जाता है और कुत्सित विचारों के दूर करने से वह पूर्ण
सुख और शांति का भोग करता है।

इस प्रकार आत्मोन्नति करते करते मनुष्य उन महात्माओं
के सन्निकट पहुंच जाता है, जिन्हों ने अज्ञानता, और मानसिक
विकारों को चूर कर दिया है, और सत्य को प्राप्त करके नित्य
लोक में प्रवेश कर लिया है।

७–विजय।

जिस मनुष्य ने अपने आप को वश में करना प्रारम्भ कर दिया है वह फिर कोई भी बुराई नहीं करता। वह सदैव शुभ कार्य करता है। बुराई में पड़ना अत्यन्त निर्बलता है, किन्तु भलाई करना अत्यन्त प्रबलता है। दुःख और शोक में पड़ना मानों यह कहना है कि मैं निर्बल हूँ, जीवन दुःखमय है और इससे मैं विनिर्मुक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार बुराई के वश में होना धर्म के विरुद्ध है। यह तो भलाई का खुले शब्दों में इनकार करना है। इससे केवल बुराई की शक्ति बढ़ती है, जीवन स्वार्थ युक्त और शोक मय बन जाता है, लोभ लालच से आत्म रक्षा करने की शक्ति भी मनुष्य में नहीं रहती और न वह शान्ती ही रहती है जो उस मनुष्य में पाई जाती है जिसका मन भलाई में भीगा होता है।

मनुष्य सदैव दुःख और क्लेश भोगने के लिए नहीं बनाया गया है किन्तु आनन्द और विजय प्राप्त करने के लिए। सृष्टि के सम्पूर्ण अध्यात्मिक नियम भले मनुष्यों में पाये जाते हैं, कारण कि भलाई उनकी रक्षा करती रहती है। बुराई का कोई नियम नहीं है। उसका कार्य ही सर्वनाश करना है।

...ों की शिक्षा प्रणाली ऐसी बिगड़ी हुई है कि उस
...ार की शिक्षा नाम मात्र को भी नहीं दी जाती। लड़के
...र्थः बुराई की ओर अधिक झुक जाते हैं और धीरे धीरे उसके
शिकार बन जाते हैं। यही कारण है कि आज कल के लड़कों
का चरित्र प्रायः बिगड़ा हुआ दीख पड़ता है। यदि शिक्षक
लोग इस ओर तनिक भी ध्यान दें तो इस दुर्गुण का काला
मुंह होना कोई कठिन बात नहीं है, परन्तु खेद तो यह है कि
और तो और हमारे शिक्षकगण भी इस गुण से वंचित रहते हैं
और इसी कारण इसकी शिक्षा नहीं दे सकते।

नैत्तिक उन्नति लोगों में दृष्टिगोचर नहीं होती। उसके लिए
जीवन युद्ध करना होगा। वह समय अब शीघ्र ही आने वाला
है जब कि नैत्तिक शिक्षा युवाओं की शिक्षा का एक मुख्य अंग
होगी और केवल वही मनुष्य धर्म गुरु बन सकेगा, जो आत्म-
संयमी होगा, जिसमें उच्च कोटि की पवित्रता और सत्य परा-
यणता पाई जाएगी और जो लोगों को चरित्र संगठन की शिक्षा
दे सकेगा जो उस समय धर्म का एक मुख्य अंग होगी।

जो सिद्धान्त यहां पर बतलाया गया है उससे यही तात्पर्य
है कि बुराई पर विजय प्राप्त हो, पाप का सर्व नाश हो, और
भलाई में मनुष्यों की प्रवृत्ति हो तथा वे नित्य आनन्द का
भोग कर सकें। प्रत्येक युग में धर्म गुरु और तीर्थंकरों की यही
शिक्षा रही है। मूर्ख और अज्ञानी जनों के द्वारा कितना ही
इसका रूप बदल गया हो परन्तु पूर्व काल में जितने पूर्ण ज्ञानी
और तीर्थंकर हुए हैं उन सब का यही सिद्धान्त था और भविष्य
में भी यही रहेगा। यह सत्य का सिद्धान्त है।

विजय से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि ...
बुराई है उस पर विजय प्राप्त की जाए या बुरे मनुष्य,
भूत पिशाचों पर जय लाभ किया जाए, किंतु इससे यह तात्पर्य
है कि अपने अंतरंग में जो बुराई है उस पर विजय प्राप्त की
जाए, बुरे और गंदे विचारों को मन से दूर कियां जाए, कुत्सित
इच्छाओं और घृणित वासनाओं का परित्याग किया जाए,
कारण कि जब मनुष्यों के हृदय विशुद्ध हो जाएँगे तब फिर
कोई भी यह नहीं कहेगा कि संसार में बुराई है। जिस दिन
मनुष्यों के हृदय पवित्र हो जाएँगे उस दिन सारी बुराइयाँ
जाती रहेंगी, दुःख और शोक का कहीं पता भी न लगेगा और
संसार में सदैव सुःख का साम्राज्य रहेगा।

ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

प्रवेशिका ।

(नक्षत्र-पट सहित)

सजिल्द !!

लेखकः—

श्रीमान् बाबू चेतनदास जैन. B. A. हेडमास्टर,

गवर्मेन्ट हाईस्कूल, मथुरा ।

ज्योतिष-विषय की ऐसी सचित्र सुबोध पुस्तक अब तक हिन्दी भाषा में प्रकाशित नहीं हुई । साधारण लोग ज्योतिष को जटिल समझ कर सीखने का प्रयत्न नहीं करते थे; अब यह बात नहीं रही । सूर्य, चन्द्र, तारागण का साक्षात परिचय, महीने, ऋतुएं, दिन रात व लौंद मास के होने के कारण, ग्रहण का रहस्य, पंचांग आदि महत्व पूर्ण विषय, तारों को देख-कर दिशा व रात्रि का समय बता देना, संक्राति व लग्न निकालना, जन्म पत्री बनाना आदि सब सरल होगया । विद्वान लेखक ने वर्षों के अध्यन और मनन के पश्चात् इन जटिल विषयों को ऐसी रोचक विधि से वर्णन किया है-कि साधारण बुद्धि का मनुष्य भी स्वल्प श्रम से समझ जाता है । नक्षत्र पट और नक्षत्र-घड़ी आदि मनोमोहक चित्रों से ऐसा प्रति भासित होता है जैसे सचमुच हाथ के सामने आकाश चक्कर लगा रहा है । ज्योतिष देवताओं के नाम बहुत दिनों से सुनते रहे हैं किन्तु इसके द्वारा उनके साक्षात दर्शन होजाते हैं । नक्षत्र-पट में, नक्षत्रों के स्थान, इंग्रेजी तारीख से इस प्रकार दिए हैं कि जिस दिन से देखना चाहो, उसी दिन के सामने सूर्य की राशि-अंश द्वारा किसी समय का लग्न और रात्रि समय झट बता सकता है । सचमुच गागर में सागर प्रस्तुत है । स्वयं सेवकों, स्काउटस, विद्यार्थियों व आकाश-निरीक्षण प्रेमियों को तुरत ही मंगाना चाहिए । मूल्य केवल १।।) मात्र ।